विचार बिन्दु

लोगों की समझ शक्ति के मुताबिक उपदेश देना चाहिए। –हदीस

केवल जीडीपी की वृद्धि सभी के चेहरों पर मुस्कान नहीं लाती

अर्थशास्त्र के सिद्धांत में आर्थिक वृद्धि को विकास का पर्याय मानने की एक सामान्य अवधारणा बनी हुई है। लेकिन कुछ प्रमुख अर्थशास्त्री इस अवधारणा को मूलत: गलत मानते हैं। वे कहते हैं कि इस अवधारणा में आर्थिक विकास से जुड़ी लागतों, विशेष रूप से प्राकृतिक संसाधनों के ह्रास और इससे उत्पन्न प्रदूषण, की अनदेखी की जाती है। आर्थिक वृद्धि को विकास मान लेने की अवधारणा को सबसे बड़ी चुनौती अर्थशास्त्री हरमन डेली ने दी थी। लेकिन इस अर्थशास्त्री को उसके सिद्धांतों के लिए आर्थिक जगत के स्थापित विद्वानों ने विधर्मी करार दिया और पारंपरिक अर्थशास्त्रियों ने उन्हें नज़रअंदाज़ किया। हालांकि, उनके कई अनुयायी भी थे जो जलवायु परिवर्तन के बढ़ते हानिकारक प्रभावों और उससे निपटने के लिए आवश्यक भारी धनराशि की भविष्यवाणी करने वाला भविष्यवक्ता मानते थे। इस अर्थशास्त्री ने समझाया कि जब विकास की लागत उसके लाभों से अधिक हो जाती है, तो वह घाटे का सौदा हो जाती है। अर्थव्यवस्था पृथ्वी के जीवमंडल से अलग नहीं, बल्कि उसके भीतर मौजूद होती है और इसका पैमाना सीमित प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करता है। विकास की मौजूदा अवधारणा को चुनौती देने वाले अर्थशास्त्री राजनेताओं, सरकारों और अन्य अर्थशास्त्रियों से आठाह करते रहे हैं कि वे विकास के अथक प्रयास को त्यागकर स्थिर अवस्था वाली ऐसी अर्थव्यवस्था अपनाएं जो मानव जीवन को सहारा देने और पर्यावरण के संरक्षण के बीच एक संतुलन बना कर रख सके। इसके लिए वे जीडीपी को "सतत आर्थिक कल्याण सूचकांक" जैसे मैट्रिक्स से बदलने की हिमायत करते हैं, जिसमें न केवल उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य का, बल्कि इस प्रक्रिया में हुए पारिस्थितिक नुकसान का भी हिसाब लगाया जाए। आज की वैश्विक व्यवस्था में किसी देश की प्रगति का सबसे बड़ा मापदंड उसके सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) या आर्थिक वृद्धि दर को माना जाता है। जब भी किसी देश की जीडीपी बढ़ती है, यह माना जाता है कि वह देश विकास की राह पर है। लेकिन क्या सचमुच केवल आर्थिक वृद्धि ही विकास का पर्याय है? क्या उच्च वृद्धि दर का अर्थ यह है कि समाज का हर वर्ग खुशहाल और सशक्त है? इस प्रश्न का उत्तर निश्चय ही नहीं में ही है। विकास का वास्तविक अर्थ केवल उत्पादन या धन में वृद्धि नहीं, बल्कि मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार से भी है। यदि आर्थिक वृद्धि के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, समानता, पर्यावरण संतुलन और सामाजिक न्याय जैसे पहलुओं की अनदेखी हो, तो वह विकास नहीं, बल्कि एकतरफा प्रगति कही जाएगी। इसलिए कह सकते हैं कि मात्र आर्थिक वृद्धि विकास का पैमाना नहीं हो सकती। आर्थिक वृद्धि तो एक मात्रात्मक अवधारणा है जो केवल यह दर्शाती है कि किसी देश की अर्थव्यवस्था ने एक निश्चित अवधि में कितना अधिक उत्पादन किया। यह आंकड़ा जीडीपी या राष्ट्रीय आय के रूप में सामने आता है। जबकि विकास एक गुणात्मक अवधारणा है, जिसमें जीवन स्तर, शिक्षा, स्वास्थ्य, लैंगिक समानता, पर्यावरण संरक्षण, रोजगार के अवसर और सामाजिक सुरक्षा जैसी बातें शामिल होती हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी देश की जीडीपी दस प्रतिशत की दर से बढ़ रही हो, लेकिन उसके नागरिकों को शुद्ध पेयजल, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, और स्वास्थ्य सुविधाएं नहीं मिल रही हों, तो उस देश को विकसित नहीं कहा जा सकता।

भारत आज विश्व की सबसे तेज़ी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में शामिल है। वर्ष 2023-24 में भारत की जीडीपी वृद्धि दर लगभग सात प्रतिशत रही, जो कई विकसित देशों से अधिक है। फिर भी, संयुक्त राष्ट्र मानव विकास सूचकांक में भारत की रैंक 2024 में 134वें स्थान पर रही। यह विरोधाभास स्पष्ट करता है कि वृद्धि और विकास दो अलग बातें हैं। भारत में शिक्षा की स्थिति पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि यहां साक्षरता दर बढ़ी है, लेकिन सामान्य जनों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा अब भी दूर की कौड़ी है। सरकारी विद्यालयों की हालत, शिक्षक-छात्र अनुपात, और डिजिटल शिक्षा तक असमान पहुंच, ग्रामीण और शहरी भारत के बीच गहरी खाई स्पष्ट नजर आती है। यदि शिक्षा प्रणाली बच्चों में कौशल, सोच और रोजगार क्षमता विकसित नहीं करती, तो आर्थिक वृद्धि के बावजूद बेरोज़गारी बढ़ती रहेगी। इसी प्रकार स्वास्थ्य सेवाओं की असमानता भी सामने आती है। हमारे देश में प्रति व्यक्ति स्वास्थ्य पर सरकारी व्यय विश्व औसत से बहुत कम है। ग्रामीण क्षेत्रों में अस्पतालों की कमी, डॉक्टरों की अनुपलब्धता और महंगे निजी इलाज आम नागरिक को विकास के लाभों से दूर करते हैं। गरीबी और असमानता का मुद्दा भी प्रमुख है। नीति आयोग की 2023 की रिपोर्ट के अनुसार भारत में गरीबी दर में गिरावट आई है, परंतु लोगों के बीच आय की असमानता तेजी से बढ़ी है। ऑक्सफैम रिपोर्ट 2022 के मुताबिक, भारत के शीर्ष एक प्रतिशत लोगों के पास देश की 70 प्रतिशत संपत्ति केंद्रित है, जबकि सबसे निचले 50 प्रतिशत लोगों के पास मात्र 3 प्रतिशत संपत्ति है। ऐसी विषमता वाली अर्थव्यवस्था भले ही ऊपर से समृद्ध दिखे, लेकिन वह समाज को स्थिरता नहीं दे सकती। दुनिया के अन्य देशों के भी उदाहरण हमारे सामने हैं जब आर्थिक वृद्धि से विकास नहीं आया। चीन ने बीते तीन दशकों में असाधारण आर्थिक वृद्धि हासिल की। करोड़ों लोग गरीबी से बाहर निकले, लेकिन इसी के साथ वहां पर्यावरण प्रदूषण, श्रमिक शोषण और मानसिक स्वास्थ्य जैसी समस्याएं बढ़ीं। आज चीन के कई शहरों में प्रदूषण का स्तर जीवन के लिए खतरा बन चुका है। यह दिखाता है कि तेज़ आर्थिक वृद्धि के साथ पर्यावरण और मानव जीवन की गुणवत्ता का संतुलन न बने तो विकास अधूरा रह जाता है। इसी प्रकार ब्राज़ील ने 2000 के दशक में तेज़ आर्थिक विस्तार देखा, लेकिन शिक्षा, स्वास्थ्य और कानून व्यवस्था की कमजोरी के कारण वहां सामाजिक असमानता बढ़ती रही। आज भी ब्राज़ील में अमीर इलाकों के स्कूल और झुग्गियों के स्कूलों में जमीन-आसमान का फर्क है। इसलिए भारतीय परिप्रेक्ष्य में विकास की चुनौतियों के बारे में नीति निर्माताओं को ध्यान देना होगा। भारत में आर्थिक नीतियां अक्सर जीडीपी वृद्धि केंद्रित रही हैं, न कि समावेशी विकास केंद्रित। इसे बहुत से लोग रोजगार विहीन वृद्धि भी कहते हैं। भारत की जीडीपी बढ़ती रही है, परंतु रोजगार सृजन उसकी गति से मेल नहीं खा सका है। वर्ल्ड बैंक की रिपोर्ट के अनुसार, भारत की वृद्धि 'जॉब लैस ग्रोथ' है, जहां उत्पादन तो बढ़ता है, पर रोजगार के अवसर नहीं बढ़ते। जब युवा हाथों को काम नहीं मिलता है तब वह असंतोष, अपराध की ओर उन्मुख होता है और देश में सामाजिक अस्थिरता बढ़ती है।

> **सच्चा विकास वह है जहां हर व्यक्ति को समान अवसर मिले, शिक्षा और स्वास्थ्य सबके अधिकार बनें, पर्यावरण और अर्थव्यवस्था में संतुलन हो, और विकास की रोशनी अंतिम व्यक्ति तक पहुंचे। यह सिर्फ कानून की किताबों में न हो, ठेट धरातल पर हो। आर्थिक वृद्धि विकास की राह जरूर दिखाती है, पर वास्तविक विकास तभी होता है जब वह प्रत्येक जीवन को छूए।**

आर्थिक समीक्षक ग्रामीण भारत की उपेक्षा की ओर भी इंगित करते हैं जबकि निर्वाचित प्रतिनिधियों का बहुमत वहीं से चुन कर आता है और नीति निर्माता बनता है। भारत की 60 प्रतिशत से अधिक आबादी आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है, जहां बुनियादी ढांचा, शिक्षा, स्वास्थ्य, और रोजगार के अवसर सीमित हैं। शहरीकरण के साथ-साथ ग्रामीण अर्थव्यवस्था के ठहराव ने विकास को असमान बना दिया है। जानकार लोग पर्यावरणीय असंतुलन की बात भी करते हैं। तेज़ औद्योगिकीकरण और शहरी विस्तार ने पर्यावरण पर भारी दबाव डाला है। दिल्ली से लेकर मुंबई तक वायु प्रदूषण स्वास्थ्य संकट बन चुका है। यह किसी से छुपा नहीं है कि यदि आर्थिक वृद्धि पर्यावरणीय संतुलन की कीमत पर होगी, तो वह भविष्य की पीढ़ियों के लिए विनाशकारी होगी। यही कारण है कि अब इस बात पर जोर दिया जाने लगा है कि देश के विकास का वास्तविक मूल्यांकन जीडीपी से नहीं, बल्कि मानव विकास सूचकांक, बहुआयामी गरीबी सूचकांक, और पर्यावरण प्रदर्शन सूचकांक जैसे मापदंडों से किया जाना चाहिए। इन सूचकों में औसत जीवन प्रत्याशा, शिक्षा की गुणवत्ता, प्रति व्यक्ति आय, लैंगिक समानता, स्वच्छ ऊर्जा और पर्यावरण संरक्षण आदि शामिल होते हैं। भारत में इन संकेतकों में सुधार से ही हम अपने को विकसित कह सकेंगे और समावेशी और सतत विकास की दिशा में बढ़ सकेंगे। इसके लिए शिक्षा और कौशल विकास में निवेश बढ़ाना होगा। नई शिक्षा नीति 2020 ने कई सकारात्मक दिशा-निर्देश दिए हैं, लेकिन इनका प्रभाव तभी होगा जब जमीनी स्तर पर अमल हो। स्वास्थ्य को प्राथमिकता देनी होगी तथा स्वास्थ्य ढांचे में ग्रामीण और प्राथमिक केंद्रों को मजबूत बनाना होगा। देश के नागरिकों के बीच आय की असमानता पर काबू पाना होगा व न्यूनतम मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा को सशक्त बना कर अमीर-गरीब की खाई को कम करना होगा। हैं। यह समझना जरूरी है कि पर्यावरण संरक्षण के बिना कोई भी विकास स्थायी नहीं हो सकता। अक्षय ऊर्जा, जल संरक्षण और कार्बन उत्सर्जन में कमी को विकास नीति के केंद्र में लाना होगा। लैंगिक समानता विकास का मूल है। महिलाओं को शिक्षा, रोजगार और निर्णय प्रक्रिया में समान अवसर देने से ही समाज का संतुलित विकास संभव है। विकास का वास्तविक अर्थ मानवता का उत्थान होता है। आर्थिक वृद्धि केवल संख्याओं का खेल है, जबकि विकास उन संख्याओं के पीछे की, मानव की, कहानी है। देश की जीडीपी बढ़ती है लेकिन नागरिकों के चेहरों से मुस्कान गायब रहती है, तो वह प्रगति अधूरी कहलाएगी। भारत जैसे विशाल और विविध देश के लिए समावेशी, सतत और मानवीय विकास ही वास्तविक लक्ष्य होना चाहिए। सच्चा विकास वह है जहां हर व्यक्ति को समान अवसर मिले, शिक्षा और स्वास्थ्य सबके अधिकार बनें, पर्यावरण और अर्थव्यवस्था में संतुलन हो, और विकास की रोशनी अंतिम व्यक्ति तक पहुंचे। यह सिर्फ कानून की किताबों में न हो, ठेट धरातल पर हो। आर्थिक वृद्धि विकास की राह जरूर दिखाती है, पर वास्तविक विकास तभी होता है जब वह प्रत्येक जीवन को छूए।

–अतिथि संपादक,
राजेन्द्र बोड़ा
(वरिष्ठ पत्रकार एवं विश्लेषक)

संविधान दिवस पर विशेष लेख
भारतीय संविधान - लोकतंत्र की आत्मा

वासुदेव देवनानी

भारत का संविधान केवल एक विधिक दस्तावेज नहीं, बल्कि राष्ट्र की आत्मा, जन-संघर्षों का प्रतीक और लोकतांत्रिक भविष्य की दिशा दिखाने वाला प्रकाश स्तंभ है। 1947 में देश को अंठोजी शासन की सदियों की गुलामी से मुक्ति और आजादी मिलने के बाद 26 नवंबर 1949 को संविधान सभा द्वारा अंगीकृत किये गए इस महान दस्तावेज़ ने भारत की स्वतन्त्रता को नैतिक और संस्थागत ढांचा प्रदान किया। संविधान दिवस इस ऐतिहासिक क्षण को स्मरण करने और लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करने का एक सुनहरा अवसर है।

संविधान दिवस की घोषणा और सार्थकता : भारत ही नहीं पूरे विश्व ने देखा कि वर्ष 2014 में जब नरेन्द्र मोदी जी पहली बार देश का प्रधानमन्त्री बने तब उन्होंने लोकतन्त्र के मंदिर संसद की सीढ़ियों पर शीश नवाया और संसद के केन्द्रीय कक्ष में संविधान को अपने माथें से लगा नमन किया। बाद में वर्ष 2015 में उनकी सरकार ने प्रति वर्ष 26 नवंबर को संविधान दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की। इस दिवस को मनाने का उद्देश्य नागरिकों में संविधान के प्रति जागरूकता बढ़ाना, मौलिक अधिकारों और कर्तव्यों को समझाना तथा संविधान निर्माताओं के योगदान का सम्मान करना है। आज जब लोकतंत्र वैश्विक चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब संविधान दिवस हमें यह याद दिलाता है कि राष्ट्र की शक्ति उसके संवैधानिक चरित्र में निहित है। इसका उद्देश्य संविधान की सोच, संवैधानिक सिद्धांतों और नागरिक कर्तव्यों के प्रति जन-जागरूकता बढ़ाना है। संविधान केवल सरकार का ढांचा तय नहीं करता, बल्कि नागरिकों के अधिकारों, स्वतंत्रताओं और गरिमा की रक्षा भी करता है। संविधान ही वह आधार है जो राष्ट्र को स्थिरता और दिशा प्रदान करता है।

संविधान निर्माण की ऐतिहासिक यात्रा : स्वतंत्रता के बाद भारत को एक ऐसे संविधान की आवश्यकता थी जो विविधताओं से भरे इस देश को एकसूत्र में बाँध सके। 1946 में गठित भारत की संविधान सभा ने अथक परिश्रम किया। संविधान पर 165 दिनों तक खुली चर्चा, बहस एवं विस्तृत विचार-विमर्श हुआ डॉ. भीमराव आंबेडकर की अध्यक्षता वाली ड्राफ्टिंग कमेटी ने विश्व भर के संविधानों का अध्ययन कर भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप सर्वश्रेष्ठ सिद्धांतों और सर्वोत्तम तत्वों को इसमें शामिल किया। 2 वर्ष 11 माह और 18 दिनों की व्यापक चर्चा के बाद संविधान का निर्माण हुआ तथा 26 जनवरी 1950 को यह लागू हुआ। यह यात्रा भारतीय गणराज्य और भारत के लोकतंत्र की शक्तिशाली नींव का प्रमाण है। यह वही लोकतांत्रिक यात्रा एवं परंपरा है जो भारत को आज भी वैश्विक मंच पर सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में पहचान दिलाती है।

भारतीय संविधान की विशेषताएँ : भारत का संविधान अपनी गहराई, व्यापकता और दूरदर्शिता के कारण अद्वितीय है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. मौलिक अधिकार : संविधान नागरिकों को छह मौलिक अधिकार देता है समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता, शिक्षा और संस्कृति संबंधी अधिकार तथा संवैधानिक उपचार का अधिकार। ये अधिकार लोकतंत्र की धड़कन माने जाते हैं और नागरिकों की स्वतंत्रता और गरिमा की रक्षा करते हैं।

2. मौलिक कर्तव्य : संविधान का भाग-4 (क) नागरिकों को कर्तव्यों के प्रति सचेत करता है। पर्यावरण संरक्षण से लेकर राष्ट्र की अखंडता बनाए रखने तक के कर्तव्य नागरिक जीवन में सामूहिक जिम्मेदारी की भावना पैदा करते हैं।

3. लोकतांत्रिक शासन - व्यवस्था : भारत ने आजादी के तुरंत बाद सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार अपनाया। यह कदम अत्यंत प्रगतिशील था व हर नागरिक को बराबर राजनीतिक अधिकार देने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

4.. संघीय ढांचा : भारत के संविधान ने केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों के संतुलन वाली संघीय व्यवस्था दी गई है, साथ ही एकीकृत शक्ति संरचना के माध्यम से संकट की स्थितियों को संभालने की क्षमता भी रखी गई है। केंद्र और राज्यों के मध्य शक्तियों का संतुलन भारत की विविधता को एकता में पिरोता है।

5. स्वतंत्र न्यायपालिका : न्यायपालिका नागरिक अधिकारों की संरक्षक है। यह लोकतंत्र में आवश्यक 'चेक एंड बैलेंस' बनाए रखती है।सुप्रीम कोर्ट और हाई कोर्ट नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करते हैं और लोकतंत्र की शुचिता बनाए रखते हैं।

6. धर्मनिरपेक्षता एवं सामाजिक न्याय : भारत के संविधान में सभी धर्मों का सम्मान और समान व्यवहार का सिद्धांत निहित है। समाज के कमजोर वर्गों के एससी, एसटी, ओबीसी, महिलाएँ एवं बच्चों के लिए विशेष संरक्षण सुनिश्चित करता है। संविधान में इन वर्गों के उत्थान के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं, जिससे समानता और न्याय का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

डॉ. आंबेडकर : भारत के संविधान शिल्पकार : डॉ. भीमराव आंबेडकर ने भारतीय समाज की जटिलताओं को निकट से समझ कर संविधान में सामाजिक न्याय, समानता और गरिमा को मूल केंद्र बनाया। उन्होंने कहा था कि संविधान अच्छा है या बुरा यह इस पर निर्भर करेगा कि इसे चलाने वाले लोग कितने अच्छे हैं। यह संदेश आज भी अत्यंत प्रासंगिक है जितना कि स्वतंत्रता के तुरंत बाद प्रासंगिक था।

संविधान की डिजिटल युग में प्रासंगिकता : 21वीं सदी का भारत भी डेटा सुरक्षा, साइबर अपराध, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता,गलत सूचना, पर्यावरण संकट और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से जुड़े नैतिक प्रश्न जैसी कई नई चुनौतियों से जूझ रहा है। संविधान हमें इन मुद्दों पर संतुलित दृष्टिकोण देता है और नागरिक अधिकारों एवं कर्तव्यों के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। हमारा संविधान तकनीकी नवाचार के साथ-साथ मानवीय मूल्यों को कायम रखने में महत्वपूर्ण मार्गदर्शक भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

भारत की एकता की आधारशिला : संविधान दिवस पर देश भर में कई गतिविधियाँ जैसे विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, सरकारी कार्यालयों और न्यायालयों में संविधान की प्रस्तावना का सामूहिक पाठ, निबंध, भाषण, क्विज़ प्रतियोगिताएँ, विधिक जागरूकता कार्यक्रम, विशेष व्याख्यान और गोष्ठियाँ, संसद और विधानसभाओं में विशेष आयोजन आदि होतें है। हमारा संविधान कहता है कि हर भारतीय समान है। कोई व्यक्ति धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र या वर्ग के आधार पर बड़ा या छोटा नहीं है। हमारा संविधान भारत की बहुलतावादी संस्कृति को एक सूत्र में बाँधने वाला सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। जहाँ अधिकार और कर्तव्य साथ-साथ चलते हैं, सभी के लिए अवसर खुले है तथा सामाजिक न्याय और समावेशी विकास आधुनिक भारत की आत्मा है। यह संविधान हमें विविधता में एकता का संदेश देता है। भारत का संविधान केवल शासन चलाने का एक दस्तावेज़ नहीं है, बल्कि करोड़ों भारतीयों की उम्मीदों, संघर्षों और आदर्शों का महान घोषणा पत्र है। जब भारतीय संविधान को अंगीकृत किया था, तब भारत के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू हुआ था।

एक ऐसा अध्याय, जिसने उपनिवेशवाद से स्वतंत्र राष्ट्र बनने की राह को स्पष्ट दिशा प्रदान की। आज के दिन को हम संविधान दिवस या राष्ट्रीय विधि दिवस के रूप में मनाते हैं, लेकिन इसकी सार्थकता इससे कहीं अधिक व्यापक है। यह दिवस हमें लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत करने और संवैधानिक मूल्यों को जीवन का हिस्सा बनाने की प्रेरणा देता है। संविधान दिवस केवल एक तिथि नहीं, बल्कि भारत के लोकतांत्रिक चरित्र का उत्सव है। संविधान दिवस हमें यह सीख देता है कि भले ही लोकतंत्र मतपत्र से बनता है, परंतु हमारा देश जागरूकता, कर्तव्यपरायणता और संवैधानिक मूल्यों से चलता है। यह हमें याद दिलाता है कि भारत की वास्तविक शक्ति संविधान के अनुशासन, मूल्य और आदर्शों में निहित है। संविधान की रक्षा केवल न्यायपालिका या सरकार का कार्य नहीं, बल्कि हर नागरिक का कर्तव्य है। आज के युवाओं के लिए यह दिन विशेष रूप से प्रेरक है। आज की युवा पीढ़ी इस दस्तावेज़ को जितना समझेगी, उतना ही भारत का लोकतांत्रिक भविष्य मजबूत होगा। यदि वे संविधान के आदर्शों न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता को आत्मसात करें, तो भारत निश्चित ही एक सशक्त, समृद्ध और प्रगतिशील राष्ट्र बनेगा। हम सबका कर्तव्य है कि संविधान के सिद्धांतों न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता को जीवन का मार्गदर्शक बनाएं। संविधान दिवस, भारतीय गणराज्य और संविधान के प्रति अटूट आस्था व्यक्त करने का एक ऐसा अवसर है जिसे मनाना हर भारतीय का कर्तव्य है।

राजस्थान विधानसभा में संविधान दीर्घा का निर्माण : राजस्थान विधानसभा के अध्यक्ष के रूप में मैंने राजस्थान विधानसभा में जो नवाचार करने के विनम्र प्रयास किये है उनमें विधानसभा के राजनैतिक आख्यान संग्रहालय का उल्लेख करना यहाँ प्रासंगिक है। इस संग्रहालय में एक संविधान दीर्घा का निर्माण भी किया गया है। संविधान दीर्घा में मूल संविधान के बाईस भागों के आरम्भ में दर्शायी गयी कलाकृतियों को प्रदर्शित किया गया है। संविधान के बाईस भागों के मुख पृष्ठ पर भारत की संस्कृति और स्वाभिमान को दिखाती हुई तस्वीरें हैं। इन तस्वीरों में भारत की प्राचीन सभ्यता मोहनजोदड़ो से लेकर महाभारत में कुरुक्षेत्र और भगवान श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए गीता के ज्ञान, भगवान श्री राम की लंका विजय, भगवान बुद्ध का जीवन चरित्र, महान सम्राट अशोक, उज्जैन के न्यायप्रिय महाराज विक्रमादित्य के राजदरबार, प्राचीन वैदिक गुरुकुल, नालंदा विश्वविद्यालय, भगवान नटराज, रामभक्त श्री हनुमान के साथ ही झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, छत्रपति वीर शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह को प्रदर्शित किया गया है। संविधान दीर्घा का उद्देश्य आमजन और युवाओं में राष्ट्र और संविधान का बोध कराने के साथ ही संविधान, संस्कृति और नैतिकता के प्रति जागरुकता लाना है। विधान सभा में हर वर्ष संविधान दिवस समारोह भी आयोजित किया जा रहा है।

–वासुदेव देवनानी,
अध्यक्ष, राजस्थान विधानसभा।

जब राजस्थान ने आवाज़ उठाई : संविधान सभा में पहचान, लोकतंत्र और विकास पर विमर्श

संगीता शर्मा

संविधान सभा की बहसें उन राजनीतिक एवं भावनात्मक चिंताओं की एक अत्यंत महत्वपूर्ण झलक प्रस्तुत करती हैं, जो राजस्थानी रियासतों के जटिल समूह से बने राज्य के एकीकरण के समय उभरी थीं। 1947 से 1949 के बीच संविधान सभा वह मंच बनी, जहाँ नवगठित संयुक्त राज्य राजस्थान के प्रतिनिधियों ने न केवल अपने प्रदेश की सामाजिक-आर्थिक आकांक्षाओं का संपूर्ण पक्ष रखा, बल्कि सामंती अवशेषों, प्रशासनिक विषमताओं और क्षेत्रीय पुनर्गठन-विशेषत: सिरोही और माउंट आबू-से जुड़ी गहरी चिंताओं को भी मुखरता से अभिव्यक्त किया। इन बहसों के माध्यम से राजस्थान का वह रूपांतरण स्पष्ट दिखाई देता है, जिसमें सदियों से वंशानुगत शासन के अंतर्गत रहा यह क्षेत्र एक लोकतांत्रिक, गणतांत्रिक भारत का अभिन्न हिस्सा बनता गया।

राजस्थान का प्रतिनिधित्व संविधान सभा में रियासतों और प्रजामंडल दोनों ही परंपराओं की संतुलित भागीदारी को दर्शाता है। रियासतों की ओर से दलेल सिंह (कोटा के महरावो के निजी सचिव), जसवंत सिंह तंवर (बीकानेर राज्य के पूर्व प्रधानमंत्री), वी. टी. कृष्णमाचारी (जयपुर राज्य के पूर्व प्रधानमंत्री) और खेतड़ी के राजा बहादुर सिंह जैसे सदस्य शामिल थे। इनके साथ प्रजामंडल एवं जन-आंदोलन परंपरा से राजबहादुर, हीरालाल शास्त्री, जय नारायण व्यास, रामचंद्र उपाध्याय, मुकुट बिहारी लाल भार्गव, बलवंत सिंह मेहता और माणिक्य लाल वर्मा जैसे नेता उपस्थित थे, जिन्होंने अपनी जमीनी राजनीतिक समझ और स्वतंत्रता संठाम के अनुभव को सभा में प्रस्तुत किया। इस प्रकार राजस्थान की आवाज़ प्रशासनिक तथा लोक-लोकतांत्रिक दोनों ही दृष्टियों से प्रतिनिधिक बनी।

प्रजामंडल परंपरा के नेताओं-माणिक्य लाल वर्मा, राजबहादुर और जय नारायण व्यास-के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों में से एक था रियासतों में व्याप्त दमनकारी संरचनाओं का प्रभाव। माणिक्य लाल वर्मा ने रियासती शक्तियों के उन्मूलन का स्वागत करते हुए कहा कि राज्यों के लोगों ने सामंती सरदारों के अत्याचारों का सबसे बुरा रूप देखा है... और आज वही लोग स्वराज का वास्तविक उजाला महसूस कर रहे हैं। साथ ही उन्होंने चेताया कि सामंतशाही के अवशेष अब भी गंभीर चुनौती बने हुए हैं। उन्होंने राजस्थान में जागीरदारों के दो वर्गों की चर्चा की-एक बदलते समय के अनुरूप ढलने को तैयार और दूसरा दहशत फैलाकर पुराने विशेषाधिकार बचाने का प्रयास करता हुआ। उन्होंने बताया कि कुछ जागीरदार डकैतियाँ करवाने लगे थे ताकि वे भारत सरकार को आतंकित कर अपने लाभ सुनिश्चित कर सकें।

राजबहादुर ने 9 नवंबर 1948 को हुई अपनी चर्चा में इस आशंका को और गहराई दी। उनका कहना था कि राजपूताना के कई हिस्सों में सामंतवाद अब भी व्याप्त है, और बेचारा किसान अभी भी स्वतंत्रता की हवा नहीं ले पा रहा। रामचंद्र उपाध्याय ने भी चेताया कि राजाओं ने सत्ता त्याग दी, किंतु उनका प्रभाव, धन और राजनीतिक आकांक्षाएँ बनी हुई हैं-राज्य तो समाप्त हो गए, पर राजा नहीं गिरे। साथ ही जाट राज, अहीर राज, और महाराष्ट्रीय राज्य जैसी संकीर्ण सब-क्षेत्रीय महत्वाकांक्षाएँ राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा बन सकती थीं।

इसी पृष्ठभूमि में रियासतों का प्रतिनिधित्व करने वाले जसवंत सिंह ने एक प्रभावशाली भाषण में इस बढ़ती प्रवृत्ति पर आपत्ति जताई, जिसमें पूर्व शासकों और जागीरदारों की निरंतर आलोचना की जा रही थी। स्वयं को जागीरदार बताते हुए उन्होंने कहा कि वे सबसे पहले भारतीय हैं और सरदार पटेल जैसे संतुलित नेतृत्व में जागीरदारी का समाधान शांतिपूर्ण ढंग से संभव है। उन्होंने नवगठित राजस्थान मंत्रिमंडल की तीखी आलोचना भी की, यह कहते हुए कि छह महीनों में उसके नेता सिर्फ भाषण देने और शासकों-जागीरदारों को कोसने के अलावा कोई ठोस प्रशासनिक कार्य नहीं कर पाए।

केंद्र द्वारा राज्यों पर नियंत्रण का विषय एक गंभीर मतभेद का कारण बना। रामचंद्र उपाध्याय ने पार्ट-बी राज्यों पर प्रस्तावित दस वर्ष के केंद्रीय नियंत्रण को थोड़ी उच्च-हस्तक्षेप जैसी प्रवृत्ति बताते हुए यह आशंका जताई कि इससे द्वैध शासन की स्थिति बन सकती है। वे मानते थे कि संक्रमणकाल में कुछ केंद्रीय अधिकार उचित हो सकते हैं, किंतु उनका प्रयोग सीमित होना चाहिए। इसके विपरीत, जसवंत सिंह ने अनुच्छेद 306 का प्रबल समर्थन किया। आर्थिक चिंताएँ भी बहस का एक प्रमुख हिस्सा थीं। माणिक्य लाल वर्मा ने भरतपुर, अलवर, बीकानेर, उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और किशनगढ़ जैसे नगरों में आजीविका संकट की ओर ध्यान दिलाया-जो रियासती शासन में साहित्य, कला, विद्वता और प्रशासन के सक्रिय केंद्र थे। राज्यों के विलय के बाद हजारों कवि, विद्वान और कलाकार बेरोजगार हो गए। वर्मा ने आठाह किया कि दिल्ली से स्थानांतरित किए जा रहे कुछ केंद्रीय कार्यालय इन नगरों में स्थापित किए जाएँ ताकि आर्थिक पतन रोका जा सके। उन्होंने बताया कि सीमा शुल्क और रेलों-बीकानेर, जोधपुर और उदयपुर-की आय समाप्त होने से राजस्थान को छह-सात करोड़ रुपये का भारी नुकसान हुआ है। इसलिए उन्होंने प्रशिक्षण शिविर, बांध निर्माण और अन्य राष्ट्रीय परियोजनाओं को राजस्थान तक विस्तारित करने की आवश्यकता पर बल दिया। क्षेत्रीय न्याय के प्रश्न पर बहस सबसे अधिक तीखी रही-विशेषत: सिरोही और माउंट आबू पर। सिरोही राज्य के विभाजन ने सभी राजस्थानी प्रतिनिधियों को एक स्वर में विरोध के लिए प्रेरित किया। जय नारायण व्यास ने बताया कि सिरोही प्रथम अनुसूची के न तो भाग-, और न ही में दर्ज था-मानो वह नो-मैन'स लैंड बन गया हो। कनवर जसवंत सिंह ने बताया कि सिरोही का शासक अवयस्क है और उसके साथ कोई 'कवेनेंट' नहीं किया गया, अत: विभाजन सर्वथा अनियमित है।

माउंट आबू बहस का सबसे भावनात्मक पक्ष बनकर सामने आया। राजबहादुर ने उसे राजस्थान का एकमात्र पर्वतीय स्थल, कलह का सेब, और एक आवश्यक स्वास्थ्य-आश्रय बताया। उसका बंबई को दिए जाने का प्रस्ताव राज्य की जनता के लिए पीड़ादायक आश्चर्य था, विशेषत: तब जब निर्णय पर्दे के पीछे लिए जा रहे थे। सरदार पटेल ने यह स्पष्ट किया कि सिरोही-सहित आबू-ऐतिहासिक रूप से गुजरात/बंबई क्षेत्र से सम्बद्ध रहा है, और सुंदर स्थलों के आधार पर राजनीतिक दावा नहीं ठहराया जा सकता। उन्होंने यह भी बताया कि विभाजन के प्रशासनिक आदेश पहले ही तैयार हो चुके हैं और राजस्थान को स्पष्ट विकल्प दिया-या तो विभाजन स्वीकार करें, या फिर पूरा सिरोही बंबई में मिल जाएगा। बहसों ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को भी उजागर किया। वर्मा ने राजस्थानी भाषा-पंद्रह मिलियन लोगों द्वारा बोली-के संवैधानिक मान्यता की माँग करते हुए महाराणा प्रताप और बीकानेर राज्य के पृथ्वीराज के बीच हुए वीरतापूर्ण दोहों का उद्धरण दिया, यह दिखाते हुए कि राजस्थानी वीर-रस की भाषा है और देशभक्ति को प्रेरित करने में सक्षम है। समग्र रूप से, संविधान सभा की बहसें बताती हैं कि राजस्थान का गठन मात्र एक प्रशासनिक प्रक्रिया नहीं था, बल्कि एक गहरा राजनीतिक व भावनात्मक परिवर्तन था। सामंतशाही की निरंतरता, असमान संघवाद, आर्थिक संकट, सीमाई विवाद और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति-इन सबने विविध रियासतों को एक लोकतांत्रिक संघ में रूपांतरित करने की जटिलताओं को उजागर किया। राजस्थानी प्रतिनिधियों ने, रियासती शासन के अपने अनुभवों से, अपने प्रदेश के लिए न्याय और गरिमा की माँग की और राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके विचार भारत के संघीय ढांचे और क्षेत्रीय कल्पना की प्रारंभिक संरचना को समझने के लिए आज भी अत्यंत मूल्यवान हैं।

**–संगीता शर्मा